D. K. Singh
Guest Faculty
Dept. of History

जापान में पश्चिम का प्रवेश

जापान भी चीन की भाँति पृथकतावादी नीति का अवलम्बन करता था तथा अपने दरवाजे विदेशियों के लिये बंद रखा था। लेकिन 19वीं सदी के मध्य उसकी यह पृथकता जाती रही जब अमेरिकी दबाव से विवश होकर उसने अपने दरवाजे पाश्चमी देशों के लिये खोल दिया।

(हाशिये पर: इस्लामिक ओरिएन्ट में अमेरिकन ...)

अमेरिका वस्तुतः दो कारणों से जापान में सुविधायें प्राप्त करना चाहता था। पहला अमेरिका अपने पाश्चमी तट के व्यापार को समुन्नत करना चाहता था। 1848ई में उसने कैलिफोर्निया और सेन फ्रांसिस्को पर अधिकार कर लिया था। इस कारण प्रशान्त महासागर में उसकी रुचि बढ़ने लगी और वह एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार चाहने लगा। इस क्रम में ज्यों ज्यों अमेरिका ने अपने पैर पश्चिम में बढ़ाये त्यों-त्यों जापान से उसका सम्पर्क अवश्यंभावी हो गया।

दूसरे जापान की भौगोलिक अवस्थिति ऐसी थी कि पश्चिम की ओर जो भी अमेरिकी जहाज जायेगा उसे जापानी बंदरगाहों की आवश्यकता पड़ेगी। पूर्व में कई अमेरिकी जहाज जापान के किनारों पर ध्वस्त भी हुये थे। 1846ई में एक अमेरिकी जहाज कठिनाई में फंस गया और उसने जापान के एक बन्दरगाह पर शरण लेनी चाही, लेकिन जापान ने इसके लिये अनुमति नहीं दी और वह जहाज नष्ट हो गया। इस हालात में अमेरिका यह महसूस करने लगा

कि प्रशान्त महासागर के कुछ बंदरगाहों पर उसका नियंत्रण होना आवश्यक है ताकि आवश्यकता पड़ने पर अमेरिकी जहाज वहाँ विश्राम कर सकें तथा कोयला-पानी ले सकें।

ऐसे वातावरण में 20 जुलाई 1846 को अमेरिकी नौसेना का अधिकारी कोमांडोर जेम्स विडिल दो जहाज लेकर एक जापानी बंदरगाह पर उतरा और व्यापारिक सम्बन्ध के लिये प्रार्थना की। लेकिन जापानी सरकार का यह मान्य नहीं हुआ। पुनः 1853 ई० में अमेरिकी राष्ट्रपति फिलमोर ने एक दूसरे नौसेना अधिकारी कोमोडोर मैथ्यू कालब्रेथ पेरी को जापान भेजा। पेरी चार युद्धपोतों के साथ यीडो की खाड़ी में पहुँचा और जापानी अधिकारियों से प्रार्थना की कि वे जापान के बंदरगाहों में अमेरिकी युद्धपोतों को ठहरने की सुविधा दें। उसने जापान के सम्राट के नाम एक पत्र भी दिया। इसके बाद पेरी वापस चला गया परंतु रवाना होने से पहले उसने जापानियों को यह चेतावनी दे दी कि वह अगले वर्ष अधिक शक्तिशाली बेड़ा के साथ जवाब लेने के लिये पुनः आयेगा।

फरवरी 1854 को पेरी पुनः जापान आ धमका। उसके जल्दी आने की वजह थी, रूस के जार निकोलस प्रथम द्वारा एडमिरल पूयातीन के नेतृत्व में नागासाकी में चार जहाजों का बेड़ा भेजा जाना, जिसका उद्देश्य था अमेरिका तथा ब्रिटिश प्रभावक्षेत्र के विस्तार को रोकना। पेरी ने आते ही शोगून से सन्धि करने की जिद की। पेरी के इस जिद ने शोगून को भारी दुविधा में डाल दी। उसने तुरंत डेम्यो की सभा बुलायी। इसमें विभिन्न मत प्रकट किये गये। एक पक्ष विदेशियों के विरुद्ध था उनका मानना था कि पहले विदेशी हमें शिक्षा देंगे, औजार देंगे, मशीन देंगे और अन्य आराम के साधन देंगे और फिर हर सम्भव उपाय द्वारा देशवासियों को धोखा देंगे। चूँकि उनका उद्देश्य व्यापार है अतएव वे धीरे-धीरे देश का धन चूसकर देश को गरीब कर देंगे। इसके बाद वे जैसा चाहेंगे हमारे साथ वैसा

व्यवहार करेंगे। किन्तु दूसरे पक्ष का कहना था कि जापान को पाश्चमी देशों के साथ सन्धियाँ करनी चाहिए तथा उनके विज्ञान, शिक्षा एवं तकनीक को अपनाकर देश को सशक्त बनाना चाहिए ताकि जापान पाश्चमी देशों का मुकाबला कर सके। अन्त में दूसरे पक्ष की बात मानकर जापान ने अपना दरवाजा पाश्चमी देशों के लिए खोलने को उत्सुक हुआ। अतः 31 मार्च 1854 को जापान एवं अमेरिका के बीच कानागावा की सन्धि हुई जिसके उपबन्धों के अनुसार अमेरिका को निम्न सुविधायें प्राप्त हुई —

(1) शीमोदा और हाकोदाते में अमरीकी जहाजों को कोयला आदि सामान लेने एवं कुछ व्यापार करने की अनुमति मिल गई।

(2) शीमोदा में अमरीकी वाणिज्य दूत के रहने की व्यवस्था हो गई।

(3) जहाज के टूटने पर बहकर आये हुये नाविकों एवं यात्रियों से अच्छा व्यवहार करने और आदर के साथ लौटाने की बात मानी गई।

(4) दोनों देशों के प्रतिनिधियों के आदान-प्रदान की व्यवस्था।

(5) अन्य देशों को जापान में जो भी अतिरिक्त सुविधायें दी जायेंगी वे संयुक्त राज्य अमेरिका को अपने आप मिल जायेंगी।

इस प्रकार विदेशियों के लिये जापान का द्वार खुल गया। उस द्वार से विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिये पश्चिम के अन्य राष्ट्रों में होड़ मच गई जिसके कारण कई सन्धियाँ उनके एवं जापान के बीच हुई —

(1) अक्टूबर 1854 में ब्रिटिश प्रतिनिधि जेम्स स्टर्लिंग ने नागासाकी में जापान से सन्धि की।

(2) फरवरी 1855 में रूस के साथ शीमोदा की सन्धि

(3) जनवरी 1856 में डचों ने भी जापान से एक सन्धि की एवं उसे नागासाकी की सीमाओं से मुक्ति मिल गई।

Scanned with CamScanner

इस तरह 1856 तक इन चार सन्धियों/देशों को जापान में विस्तृत अधिकार मिल गये और जापान के सन्यास एवं एकान्तिक जीवन का अन्त हो गया।

आगे कानागावा की सन्धि के अनुसार 1856 ई. में टाउनसेंड हेरिस अमरीकी प्रतिनिधि की हैसियत से जापान पहुँचा। यद्यपि हैरिस को प्रारंभ में कई दिक्कतों का सामना करना पड़ा परंतु उसने बड़े धैर्य एवं कूटनीति से काम लिया तथा जापानी अधिकारियों को यह समझाया कि पाश्चात्य देशों से सम्बन्ध कायम करने में ही जापान का हित है। इसी बीच द्वितीय अफीम युद्ध में चीन की हार हो गई एवं ब्रिटेन, फ्रांस ने उसपर अपमानजनक तात्कालिन की सन्धि लाद दी। हैरिस इस ओर भी जापानियों का ध्यान खींचा। उसने जापानियों को समझाया कि यदि वे अमेरिका से सन्धि नहीं करते तो उन्हें चीन की तरह स्थिति का सामना करना होगा। जापानी अधिकारियों पर इसका मनोनुकूल प्रभाव पड़ा और 29 जुलाई 1858 को जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य एक दूसरी सन्धि सम्पन्न हुई जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थायें की गई—

← कानागावा की सन्धि में विस्तार

(1) शीमोदा एवं हाकोदाते के अलावा कानागावा और नागासाकी को व्यापार के लिये खोल दिये गये, नाइगाता और ह्योगो को 1860 ई. से 1863 ई. तक धीरे धीरे खोलने की व्यवस्था की गई तथा एडो एवं ओसाका में विदेशियों को रहने की इजाजत दे दी गई।

(2) आयात एवं निर्यात करों की दरें तय की गई।

(3) जापान में अमेरिका के लोगों को अपने कानून के अन्तर्गत रहने का अधिकार दिया गया।

(4) अमेरिका ने जापान को जहाज, हथियार, और तकनीकी विशेषज्ञ देने का वचन दिया।

(5) दोनों देशों में आपसी प्रतिनिधि और दूत रखने पर सहमति।

(6) अमरीकियों को धार्मिक स्वतंत्रता दी गई।

(7) 4 जुलाई 1872 को संधि को दोहराने का प्रावधान लाया गया।

Scanned with CamScanner

इसके कुछ ही समय बाद डचों, रूसियों, अंग्रेजों, एवं फ्रांसीसियों ने भी इसी प्रकार की सन्धियाँ कीं जिन्हें सामूहिक रूप से "पाँच जातियों की सन्धियाँ" कहा जाता है। इन सन्धियों ने जापान पाश्चिमी देशों के लिये खुल गया।

इस तरह हम देखते हैं कि इन सन्धियों ने बंद जापान के द्वार विदेशी व्यापार के लिए खुल गये और जापान के पार्थक्य वाले जीवन का अंत हो गया। जापान में विदेशियों के प्रवेश की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिये न लड़ाई लड़ी गई न कोई क्षेत्र छीना गया। चीनी इतिहास की यही पुनरावृत्ति नहीं हुई जबकि दोनों लगभग एक ही समय पाश्चिमी व्यापार के लिये खुला। इसके मूल में जापानी समाज की समन्वयशीलता और जापानी अधिकारियों की दूरदर्शिता थी। लेकिन जापान को एक घाटा अवश्य हुआ कि चीन की तरह जापान में भी विदेशियों को न्याय शासन और आयात-निर्यात कर से मुक्ति मिल गई। वस्तुतः यह राज्यक्षेत्रातीत सिद्धान्त ही था जिसने जापान की सम्प्रभुता को सीमित कर दिया। लेकिन अन्य मामलों में यह चीन से बिल्कुल भिन्न था। जापान का द्वार खुलना जापानियों के लिए वरदान साबित हुआ। जापान ने पाश्चिमी देशों की ताकत के रहस्य को समझा तथा उसे अपनाने के लिए व्याकुल हो गया। इस क्रम में जापानियों ने चीनियों के विपरीत पश्चिम की उन्नत सभ्यता को अपनाने में किसी तरह के संकोच का अनुभव नहीं किया। शीघ्र ही जापान संसार का एक महान शक्ति बन गया और इसकी गणना विश्व की प्रमुख शक्तियों में होने लगी।

जापान का द्वार खुलने का एक और परिणाम यह हुआ कि इससे शोगून की बड़ी बदनामी हुई क्योंकि वह पश्चिम के सामने झुक गया था। अतएव जापान में यह माँग होने लगी कि शोगून के प्रभुत्व का अंत किया जाये और सम्राट को देश का वास्तविक शासक बनाया जाये। यह माँग धीरे धीरे ज़ोर पकड़ी एवं 1868 ई. में जापान में रक्तहीन क्रांति द्वारा सम्राट की शक्ति का पुनरुद्धार किया गया जो इतिहास में मेइजी पुनर्स्थापना के नाम से जाना जाता है।

— o —